



दैनिक भास्कर

Date: 11-10-16

मेडिकल शिक्षा में क्रांतिकारी बदलाव की पहल



दिल्ली के गलियारों में एक ताजा हवा बह रही है, जो तूफान में बदल सकती है। यह मंत्रालयों में नहीं, नीति आयोग में बह रही है, जिसने हाल ही में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ यूनिवर्सिटी में पढ़े 50 पेशेवरों की सेवाएं ली हैं। इसका पहला स्वागतयोग्य प्रयोग भारतीय चिकित्सा परिषद (एमसीआई) के अमूल परिवर्तन के हिस्से के रूप में मेडिकल कॉलेजों में होगा। विद्यार्थी क्या सीख रहे हैं, इस क्रांतिकारी रेग्युलेटरी फिलॉसॉफी पर यह आधारित होगा। अभी हम फीस, प्राध्यापकों के वेतन, टॉयलेट आदि आधारभूत चीजों में उलझे हैं। इसमें अध्यापन की गुणवत्ता व छात्र क्या सीख रहे हैं, इसकी उपेक्षा कर दी जाती है। यदि सुधार सफल रहे तो अधिक और बेहतर प्रशिक्षित डॉक्टर मिलेंगे। यदि यह पद्धति शेष भारत की शिक्षा को प्रभावित करती है तो हमारे यहां बेहतर ढंग से शिक्षित आबादी होगी।

मेडिकल शिक्षा की सारी बुराइयों की जड़ भ्रष्टाचार की पर्याय एमसीआई में है। इसके पूर्व प्रमुख तो जेल भी हो आए हैं। एमसीआई ने अवैध केपिटेशन फीस पर आधारित प्रवेश पद्धति निर्मित की। मेडिसिन के क्षेत्र में प्रगति होने के बाद भी पाठ्यक्रम में कोई बदलाव नहीं किया। गुणवान डॉक्टरों का अभाव निर्मित किया और योग्यता व नैतिक मानदंडों का अवमूल्यन किया। प्रस्तावित विधेयक ये सारी बुराइयां दूर करने का प्रयास करेगा। अनिवार्य राष्ट्रीय योग्यता परीक्षा में छात्र कितना अच्छा प्रदर्शन करता है, उसी से प्रवेश तय होगा। विद्यार्थी ने क्या सीखा यह कॉमन लाइसेंसिएट एग्जिट एग्जाम से तय होगा और उसी से कॉलेज की रैंकिंग तय होगी। धोखेबाज, कमजोर रेटिंग वाले कॉलेजों को स्तर सुधारने पर मजबूर किया जाएगा या फिर उन्हें बंद कर दिया जाएगा। कॉलेज से निकलने के पहले परीक्षा देने पर ही प्रैक्टिस का लाइसेंस मिलेगा और यही स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के लिए प्रवेश का टिकट होगा।

दुनिया की श्रेष्ठतम पद्धतियों पर आधारित बिल के मसौदे में सरकार को फीस, अध्यापकों का वेतन, पाठ्यक्रम और टॉयलेट के साइज जैसी बातों की ओर अत्यधिक ध्यान देने की जरूरत नहीं होगी। इसकी बजाय रेग्युलेटर छात्रों के शिक्षण पर निगरानी रखेगा और इसी का प्रचार करेगा कि इस मामले में कॉलेज का प्रदर्शन कितना अच्छा है। एक बार पारदर्शी, योग्यता आधारित प्रवेश पद्धति वजूद में आ जाए तो कॉलेजों को फीस, वेतन और सीटें बढ़ाने पर लगे मनमाने नियंत्रणों से मुक्त कर दिया जाएगा। 40 फीसदी सीटें गरीब, लेकिन योग्य छात्रों के लिए पूर्ण छात्रवृत्ति पर होंगी। प्राध्यापकों के वेतन को मुक्त करने से 'बड़े नाम' वाले डॉक्टर अंशकालीन रूप में ही सही, पढ़ाने की ओर आकर्षित होंगे। पाठ्यक्रम मुक्त करने से श्रेष्ठतम कॉलेज इनोवेटिव कोर्स शुरू कर सकेंगे।

दूसरी समस्या अच्छे कॉलेजों की है। आज 11 लाख छात्र मेडिकल कॉलेजों की 55 हजार सीटों के लिए संघर्ष करते हैं। भारत में 30 लाख डॉक्टरों की कमी है। आज हम जिस रफ्तार से डॉक्टर निर्मित कर रहे हैं, उससे यह कमी दूर करने में 50 साल लग जाएंगे। यह अप्रिय स्थिति इस समाजवादी चिंतन का नतीजा है कि सिर्फ सरकार को ही शिक्षा मुहैया करानी चाहिए। सरकार ने अनिच्छा से निजी क्षेत्र के प्रवेश को मंजूर किया, लेकिन इसे लाइसेंस, परमिट, इंस्पेक्टर राज की भयावह बेडियों से जकड़ दिया। इससे ईमानदार लोग कॉलेज स्थापित करने के प्रति हतोत्साहित हुए, जबकि भ्रष्ट नेताओं को प्रोत्साहन मिला। बाधाएं हटने से गुणवत्तापूर्ण मेडिकल कॉलेजों में नाटकीय वृद्धि होगी। डॉक्टरों के अभाव की समस्या भी दूर होगी।

मुझे बिल में दो ही खामियां नज़र आती हैं : एक, ग्रामीण या बेयरफुट डॉक्टरों के लिए प्रावधानों का अभाव और दो, डॉक्टरों के अनाचार के खिलाफ रोगी को संरक्षण का अभाव। इस नए कानून को पारित करना आसान नहीं होगा। एमसीआई से जुड़े डॉक्टर बहुत प्रभावशाली हैं और डॉक्टरों की संख्या बढ़ाने के किसी भी प्रयास का वे विरोध करेंगे। उन्हें बूढ़े होते समाजवादियों का समर्थन मिलेगा, जो अब भी मानते हैं कि सरकार को ही शिक्षा मुहैया करानी चाहिए। सौभाग्य से एमसीआई के आमूल बदलाव पर संसद, न्यायपालिका और कार्यपालिका में दुर्लभ सहमति है। प्रस्तावित विधेयक संसद की स्थायी समिति की सिफारिशों की भावना के अनुरूप है। यदि यह कानून का रूप लेने में कामयाब रहा तो नतीजों पर आधारित रेग्युलेटरी फिलॉसॉफी देश में हर प्रकार की शिक्षा को रेग्युलेट करने के लिए जबर्दस्त मिसाल होगी। यही बुराइयां देश में बच्चों की शिक्षा के संकट के लिए जिम्मेदार हैं। प्राथमिक शिक्षा संकट में है, क्योंकि शिक्षा का अधिकार (आरटीई) बच्चा क्या सीख रहा है, इस पर ध्यान नहीं देता। यह शिक्षकों की गुणवत्ता का भी आकलन नहीं करता। भारतीय बच्चे पढ़ने, विज्ञान और गणित की पिसा (प्रोग्राम फॉर इंटरनेशनल स्टूडेंट्स असेसमेंट) नाम की 2011 में हुई प्रतिष्ठित परीक्षा में 74 में से 73वें स्थान पर रहे थे। वार्षिक एएसईआर रिपोर्ट बताती है कि कक्षा पांच के आधे से भी कम छात्र कक्षा दो के पाठ्यक्रम का कोई पैराग्राफ पढ़ पाते हैं या साधारण जोड़-घटाव कर पाते हैं। केवल चार फीसदी शिक्षक टीचर्स एलिजिबिलिटी टेस्ट (टीईटी) पास कर पाते हैं और उत्तरप्रदेश व बिहार में चार शिक्षकों में से तीन कक्षा पांचवीं के प्रतिशत के सवाल हल नहीं कर पाते। यदि आप सीखने का आकलन नहीं करेंगे तो शिक्षक जवाबदेह कैसे होंगे? दुनिया के श्रेष्ठतम स्कूल पद्धतियों ने यह पहचान लिया है कि शिक्षक ही सबकुछ है। उन्होंने राष्ट्रीय आकलन की प्रक्रिया स्थापित की है और शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कठोर कार्यक्रम बनाया है।

यह मानना गलती है कि अच्छे शिक्षक पैदा होते हैं। सच यह है कि वे तैयार किए जाते हैं। पर्याप्त प्रशिक्षण के बाद कोई भी अच्छा शिक्षक बन सकता है। किंतु सतत व कठोर ट्रेनिंग शिक्षक के पूरे कैरियर में चलनी चाहिए। शिक्षा पद्धति का गंदा सच यह है कि शिक्षक जवाबदेह नहीं हैं- चार सरकारी शिक्षकों में से एक अनुपस्थित रहता है और जो उपस्थित होते हैं उनमें दो में एक पढ़ा नहीं रहा होता है। यदि नतीजों पर आधारित यह नई रेग्युलेटरी फिलॉसॉफी भारत के सारे शिक्षा संस्थानों पर लागू कर दी जाए तो एक क्रांति हो जाएगी। मेडिकल शिक्षा में यह सुधार, ठीक वे संस्थागत सुधार हैं, जिनकी हमने तब उम्मीद की थी, जब नरेंद्र मोदी ने अच्छे शासन और भ्रष्टाचार को मात देने का वादा किया था।

गुरचरण दास (ये लेखक के अपने विचार हैं)लेखक और स्तंभकार

From plate to plough-Rural change challenge

Inclusive agricultural growth is key to removing poverty by 2030.



Eradicating poverty from the planet was the top-most target in a set of 17 goals adopted by the UN last September as a part of its sustainable development agenda. Nations across the globe, including India, endorsed it. The strategies to achieve this goal have been left open to countries. In this context, the Rural Development Report (RDR) 2016 of the International Fund for Agricultural Development is timely.

The RDR's Asia and Pacific Region (APR) release will be in India on October 17. The report is among the more comprehensive documents that try to understand the role of

rural transformation in eradicating poverty and securing food and nutritional security within the context of economy-wide structural transformation in several countries. It is based on an empirical analysis of 60 countries drawn from various regions. Nine are from the APR. Comprising Bangladesh, Cambodia, China, India, Indonesia, Lao People's Democratic Republic, Pakistan, Philippines and Vietnam, the region is the most populous and has the largest number of poor on this planet. There are 16 countries from Latin America and the Caribbean; seven from the Near East, North Africa, Europe and Central Asia; 15 from East and Southern Africa; and 13 from West and Central Africa.

RDR 2016's first lesson pertains to the conceptual framework of development. It notes that economies of almost all the 60 countries are undergoing some sort of structural transformation — some are moving fast, many are moving at a moderate pace and some are going very slow. The transformation is reflected in rising productivities in agriculture and the urban economy as well as in the changing character of the economy — the preponderance of agriculture making way for the dominance of industry and services, greater integration with global trade and investments and growing urbanisation.

RDR's second lesson is that rural areas cannot remain insulated from this economy-wide change. They are also transformed with rising agricultural productivity, increasing commercialisation and marketable surpluses, diversification to high-value agriculture and off-farm employment through the development of agri-value chains. The third, and the most important lesson, especially for policymakers, is that rural transformation on its own may not be effective in reducing poverty unless it is inclusive. This challenge is at the heart of the report. Agricultural development is a key element of such inclusiveness since a majority of the working force in most countries at low to moderate levels of rural transformation is still engaged in agriculture.

What can India learn from this, given that agriculture still engages half of its workforce, and about 85 per cent of its farms are small and marginal (less than two hectares)? Compared to China and Vietnam, which have experienced fast structural and rural transformation, India's story is of slow transformation. As a result, poverty reduction in India was at a much slower pace during 1988-2014, compared to China and Vietnam. The RDR 2016 tells us that India's poverty reduction was slow during 1988-2005, but during 2005-12, it accelerated dramatically — almost three times faster than during the earlier period.

What did India do during this period? Research reveals that the relative price scenario changed significantly (by more than 50 per cent) in favour of agriculture in the wake of rising global prices. This boosted private investments in agriculture by more than 50 per cent. As a result, agri-GDP growth touched 4.1 per cent during 2007-12, as against 2.4 per cent during 2002-07. The net surplus of agri-trade touched \$25 billion in 2013-14; real farm wages rose by seven per cent per annum. All these led to an unprecedented fall in poverty. A good price incentive can thus trigger investments in agriculture, leading to productivity gains, increases in real farm wages and fall in poverty.

To make the rural transformation more inclusive, India will have to focus on raising productivity in agriculture through higher R&D (seeds) and irrigation and build value chains for high value agri-products like livestock and horticulture, which account for more than half the value of agriculture (cereals account for less than 20 per cent). In the building of these value chains by mainstream small holders – say, through farmer producer companies – India can create large off-farm rural employment and augment incomes of farmers and others living in rural areas. This would require large investments both by the private and public sector. If India can do all this efficiently and through a participatory mode, it can certainly hope to eliminate not only poverty but also malnutrition by 2030. For more details on RDR 2016, stay tuned till October 17.

Ashok Gulati (The writer is Infosys Chair Professor for Agriculture at ICRIER)

जनसत्ता

Date: 10-10-16

बीच बहस में

धर्म-विशेष के आंतरिक मामले में दखलंदाजी न करने की गुजारिश शनि शिंगणापुर के मामले में भी की गई थी और हाजी अली की दरगाह के मामले में भी।



यह शायद पहली बार हुआ कि केंद्र ने तीन तलाक, 'निकाह हलाला' और बहुविवाह प्रथा का सर्वोच्च अदालत में विरोध किया है। गौरतलब है कि इन प्रथाओं को चुनौती देते हुए दायर की गई कुछ याचिकाओं पर अदालत में कई महीनों से बहस चल रही है। इसी सिलसिले में अदालत ने केंद्र से अपना पक्ष रखने को कहा था। केंद्र का रुख, जाहिर है, मुसलिम समाज की कई ताकतवर संस्थाओं को रास नहीं आएगा। मसलन, आॅल इंडिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड

इसी मामले में अपना पक्ष अदालत में रख चुका है, जिसमें उसने इस मुद्दे पर अदालती सुनवाई का विरोध किया था। बोर्ड के मुख्यतः दो तर्क थे।

एक यह कि इस मसले का निपटारा सुप्रीम कोर्ट के पहले के एक फैसले में हो चुका है, इसलिए इस पर नए सिरे से सुनवाई का कोई औचित्य नहीं है। दूसरी खास दलील यह थी कि यह एक धर्म-विशेष का आंतरिक मामला है, इसलिए यह न्यायपालिका के अधिकार-क्षेत्र से बाहर है। सही है कि सुप्रीम कोर्ट पहले एक बार फैसला सुना चुका है। पर चूंकि अब

मुसलिम समाज के भीतर से भी तीन तलाक और बहुविवाह के खिलाफ आवाज उठ रही है, इसलिए अदालत को लगा होगा कि इस मसले पर नए सिरे से सुनवाई करने में कोई हर्ज नहीं है। याचिका कुछ मुसलिम महिलाओं ने ही दायर की है। हां, पहले के फैसले को देखते हुए अच्छा होगा कि इस मामले को पांच सदस्यों की संविधान पीठ को सौंप दिया जाए।

धर्म-विशेष के आंतरिक मामले में दखलंदाजी न करने की गुजारिश शनि शिंगणापुर के मामले में भी की गई थी और हाजी अली की दरगाह के मामले में भी। दोनों मामलों में संबंधित स्थलों के प्रबंधकों की इस दलील को अदालत ने खारिज कर दिया कि वहां स्त्रियों के प्रवेश पर चली आ रही पाबंदी धर्म-सम्मत है और इस पाबंदी को हटाना धार्मिक स्वायत्तता का हनन होगा। दरअसल, धार्मिक स्वायत्तता की एक सीमा है, वह उन बुनियादी अधिकारों को नहीं छीन सकती जो संविधान ने देश के सभी नागरिकों को दिए हैं। केंद्र ने अपने हलफनामे में इसी आधार पर तीन तलाक और बहुविवाह का विरोध किया है कि ये प्रथाएं संविधान के अनुच्छेद चौदह और अनुच्छेद पंद्रह से कतई मेल नहीं खातीं। इन अनुच्छेदों में गरिमापूर्ण ढंग से जीने के अधिकार और कानून के समक्ष समानता के अधिकार की गारंटी दी गई है। लिहाजा, आँल इंडिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड जैसी संस्थाओं को चाहिए कि इन संवैधानिक प्रावधानों की रोशनी में अपने पुराने रुख पर फिर से सोचें। अनेक मुसलिम बहुल देशों ने मुसलिम पर्सनल लॉ में वक्त की जरूरत महसूस कर बदलाव किए हैं। इससे इस्लाम पर कोई आंच नहीं आई। अलबत्ता वे कानून अधिक मानवीय तथा लोकतांत्रिक बने। भारत में ऐसा क्यों नहीं हो सकता!

राष्ट्रीय सहारा

Date: 10-10-16

फीकी पड़ती चमक



2016-17 के लिए दुनिया के शीर्ष शिक्षण संस्थानों की “क्यूएस वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग्स” में भारत के सभी आईआईटी और नामी-गिरामी बेंगलुरु का इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस का पिछले साल के मुकाबले कई पायदान नीचे खिसकना इस बात का संकेत है कि इन संस्थानों की चमक फीकी पड़ने लगी है। आंकड़ों पर गौर करें तो गत वर्ष की रैंकिंग में 179 वां स्थान पर रहा दिल्ली आईआईटी खिसककर 185वें स्थान पर आ गया है। इसी तरह 202 वें स्थान पर रहा बांबे आईआईटी 219 वां, 286 वें स्थान पर रहा खड़गपुर 313 वें और 272 वें स्थान पर रहा कानपुर 302 वें एवं 147 वें स्थान पर रहा आईआईएससी बेंगलुरु 152 वें स्थान पर पहुंच गया है। इस सूची में

आईआईटी मद्रास की स्थिति में पिछले साल की तुलना में सुधार हुआ है। पांच पायदान ऊपर चढ़कर यह 249 वें स्थान पर पहुंच गया है। इस सत्रे में 81 देशों के 3800 शिक्षण संस्थानों को शामिल किया गया और 916 शिक्षण संस्थानों की

रैंकिंग जारी हुई। इस सूची में पहला स्थान अमेरिका के मैसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी को हासिल हुआ है। क्रमशः दूसरा, तीसरा, चौथा व पांचवां स्थान क्रमशः स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, केंब्रिज यूनिवर्सिटी और कैलटेक यूनिवर्सिटी को प्राप्त हुआ है। भारत के इन नामी-गिरामी शिक्षण संस्थानों का शीर्ष रैंकिंग में न आना एक किस्म से उनकी साख को बट्टा लगने जैसा है। इसलिए और भी कि इन संस्थानों के गिरते स्तर के कारण हर वर्ष 60 हजार भारतीय छात्र इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए विदेशी शिक्षण संस्थानों की ओर रुख कर रहे हैं। एक वक्त था जब इंजीनियर बनने का सपना देखने वाला हर छात्र यही चाहता था कि उसे आईआईटी में दाखिला मिले। लेकिन मौजूदा परिस्थितियों में युवाओं की सोच में बदलाव आया है और उनकी नजर में अब आईआईटी को लेकर पहले जैसा आकर्षण नहीं है। इसका मूल कारण इन संस्थानों में संसाधनों की कमी और शिक्षकों का अभाव है। गौर करें तो अमेरिका और यूरोपीय देशों के जो शिक्षण संस्थान रैंकिंग में शीर्ष पर हैं, उनमें संसाधनों की बेहतरी के लिए लगातार सरकारी, निजी निवेश किया जा रहा है जबकि भारत में स्थिति बिल्कुल ही उलट है। आईआईटी संसाधनों और शिक्षकों की भारी कमी झेल रहे हैं। सरकार ने कई कॉलेजों को आईआईटी का दर्जा तो दे दिया है। लेकिन इनके पास संसाधन तो दूर पर्याप्त जगह तक मौजूद नहीं है। आज की तारीख में देश में 1200 से अधिक इंजीनियरिंग कॉलेज हैं। मगर अधिकांश में फैकल्टी, लाइब्रेरी और लेबोरेटरी की सुविधाएं नहीं हैं। आश्चर्य यह है कि सरकार आईआईटी को आधुनिक संसाधनों से लैस करने और शिक्षकों की कमी की पूर्ति की प्राथमिकता पर ध्यान टिकाने के बजाए 2020 तक एक लाख आईआईटी सीटें बढ़ाने का एलान कर दिया है। यह एक तरह से संस्थानों पर अतिरिक्त बोझ होगा, जिसे संभालना उनके लिए आसान नहीं होगा। यहां सवाल सिर्फ संसाधनों और शिक्षकों की कमी तक ही सीमित नहीं है। शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर भी गंभीर सवाल उठ रहे हैं। एक आंकड़े के मुताबिक भारत में हर वर्ष लाखों इंजीनियरिंग ग्रेजुएट निकलते हैं। परंतु सभी को रोजगार नहीं मिलता है। आईआईटी से हर साल 3000 से 3500 इंजीनियर निकलते हैं, जिनमें से 2000 विदेश चले जाते हैं और 500 के करीब मैनेजमेंट कोर्स करने लगते हैं। इसका कारण देश में रोजगार की कमी तो है ही साथ ही गुणवत्तापरक शिक्षा का अभाव भी है। पिछले दिनों प्रकाश में आई “एस्पाइरिंग माइंड्स की नेशनल इम्पल्यमेंट बिलिटी” रिपोर्ट में कहा गया कि इंजीनियरिंग डिग्री रखने वाले छात्रों में कुशलता की कमी है और उनमें से करीब 80 फीसद विद्यार्थी रोजगार के काबिल नहीं हैं। गौरतलब है कि यह रिपोर्ट देश भर के 650 से अधिक इंजीनियरिंग कॉलेजों के तकरीबन डेढ़ लाख इंजीनियरिंग छात्रों के अध्ययन पर आधारित है। एसोचैम की एजुकेशन कमेटी के सत्रेक्षण से भी उद्घाटित हुआ कि देश में चल रहे संस्थानों से निकलने वाले ज्यादातर छात्र-छात्राएं कहीं भी रोजगार पाने के लायक नहीं हैं। पिछले दो वर्षों में देश के विभिन्न राज्यों में बड़े पैमाने पर इंजीनियरिंग कॉलेज बंद हुए हैं। इसके अलावा, शिक्षा की निम्न गुणवत्ता की वजह से 2014 से 2016 के बीच कैंपस रिक्रूटमेंट में भी 45 फीसद की गिरावट आई है। इसके लिए इंजीनियरिंग शिक्षा के सिलेबस का आउटडेटेड होना भी अहम कारण है।

रीता सिंह, आईआईटी (शरद शर्मा, टीवी पत्रकार)